

शिवध्यान सिंह और एक अन्य

बनाम

मुसम्मात सनीचरा कुँअर और एक अन्य

4 मई, 1961

(पी. बी. गजेंद्रगडकर एवं के. एन. वांचू न्यायमूर्तिगण)

अंतिम डिक्री-विक्रय प्रमाणपत्र-संपत्ति का सम्यक् विक्रय एवं पूर्ण विवरण, परंतु संख्या में त्रुटि-यदि मात्र गलत वर्णन हो।

बंधक वाद में विक्रय हेतु अंतिम डिक्री तथा विक्रय प्रमाणपत्र में विवादित संपत्ति की संख्या 1060 के स्थान पर 160 अंकित कर दी गई, जबकि वास्तविक संख्या 1060 थी, तथापि अन्य विवरण इतने पूर्ण थे कि उसकी पहचान स्पष्ट रूप से स्थापित की जा सकती थी। अपीलकर्ताओं ने यह तर्क दिया कि इस भूखंड के संबंध में डिक्री प्रदान नहीं की जा सकती। उच्च न्यायालय ने यह पाया कि अंतिम डिक्री और विक्रय प्रमाणपत्र में अंकित 160 वास्तव में 1060 के स्थान पर हुई त्रुटि है तथा संबंधित खाता में 160 संख्या का कोई भूखंड अस्तित्व में नहीं है। उच्च न्यायालय ने आगे यह भी माना कि यह मामला मात्र गलत वर्णन का है, न कि पहचान के विवाद का। एक अन्य विवादित भूखंड के संबंध में, द्वितीय बंधकधारकों की ओर से स्थानापन्न अधिकार का दावा किया गया, यह कहते हुए कि प्रथम बंधक का विमोचन द्वितीय बंधकधारकों द्वारा किया गया था, यद्यपि उनके बंधक पत्र में पूर्ववर्ती बंधक का कोई उल्लेख नहीं था और न ही उसके विमोचन के लिए कोई राशि छोड़ी गई थी।

अभिनिर्धारित किया गया, (i) कि उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचने में सही था कि यह मात्र गलत वर्णन का मामला है, और चूँकि संपत्ति की पहचान स्पष्ट रूप से स्थापित थी, अतः अपीलकर्ताओं का तर्क अस्वीकार्य है।

ठाकुर ब्रह्मा बनाम बनाम जीबोन मानवारे, (1913) एल.आर. 41 आई.ए. 38, गोसाईं दास कुंड़ बनाम मृत्युंजय अग्रन सरदार, (1913) 18 सी.एल.जे. 541 — का अनुसरण किया गया।

रामभद्र नायडू बनाम कादिरुजा समी नायकर, (1921) एल.आर. 48 आई.ए. 155 — से भिन्न माना गया।

(ii) द्वितीय बंधक में स्थानापन्न अधिकार के संबंध में किसी भी प्रकार का समझौता न होने की स्थिति में, स्थानापन्न अधिकार का प्रश्न उठाया ही नहीं जा सकता।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : दीवानी अपील संख्या 497 वर्ष 1957।

पटना उच्च न्यायालय के दिनांक 10 अक्टूबर 1955 के निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध अपील, जो मूल डिक्री अपील संख्या 483 वर्ष 1947 से संबंधित है

अपीलकर्ताओं के लिए एल. के. झा और पी. के. चटर्जी

उत्तरदाता संख्या 1 से 7 तक के लिए ए. वी. विश्वनाथ शास्त्री और आर. सी. प्रसाद,

4 मई 1961 न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा सुनाया गया—

वांचू, न्यायमूर्ति— यह एक अपील है, जो पटना उच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त प्रमाण-पत्र के आधार पर दायर की गई है। उत्तरदाताओं ने दस भूखंडों के संबंध में वाद दायर किया और यह घोषणा करने की प्रार्थना की कि उक्त संपत्ति उन्हीं की है, तथा प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं को बेदखल कर भूखंडों का कब्जा तथा मध्यवर्ती लाभ प्रदान किया जाए। अपीलकर्ताओं के अतिरिक्त वाद में प्रतिवादियों का एक अन्य समूह भी था, जिनसे उत्तरदाताओं ने उक्त संपत्ति क्रय की थी। उत्तरदाताओं का कथन था कि अपीलकर्ताओं ने अन्य प्रतिवादियों से बंधक पत्र के आधार पर ऋण लिया था, जिसके आधार पर उन प्रतिवादियों ने वर्ष 1932 में वाद दायर किया। यह वाद अपीलकर्ताओं के विरुद्ध डिक्री कर दिया गया और तत्पश्चात् उन प्रतिवादियों ने निष्पादन कार्यवाही में बंधक संपत्ति को नीलाम कराकर वर्ष 1936 में स्वयं क्रय कर लिया। इसके बाद न्यायालय द्वारा कब्जा दिलाए जाने पर वे प्रतिवादी संपत्ति के कब्जे में आ

गए। वे प्रतिवादी वर्ष 1943 तक संपत्ति के कब्जे में रहे और बाद में उन्होंने इसे उत्तरदाताओं को बेच दिया। इसके पश्चात उत्तरदाता संपत्ति के कब्जे में आ गए। हालाँकि, अपीलकर्ताओं ने वर्ष 1942 से ही उपद्रव करना प्रारंभ कर दिया था। उत्तरदाताओं को विक्रय के बाद अपीलकर्ताओं ने और अधिक बाधाएँ उत्पन्न कीं, जिसके कारण दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अंतर्गत कार्यवाही हुई और अपीलकर्ताओं को विवादित संपत्ति पर जाने से प्रतिबंधित कर दिया गया। बाद में अपीलकर्ताओं को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 107 के अंतर्गत शांति बनाए रखने हेतु बंधपत्रित किया गया। वर्ष 1945 में इस संपत्ति के संबंध में एक हत्या भी हुई, जिसके कारण कुछ अपीलकर्ताओं का सत्र न्यायालय में विचारण हुआ, परंतु वे दोषमुक्त कर दिए गए। उसी वर्ष इन भूखंडों की फसल को लेकर भी और विवाद उत्पन्न हुआ। अंततः सत्र न्यायालय से दोषमुक्त होने के बाद, अपीलकर्ताओं ने बलपूर्वक उत्तरदाताओं को बेदखल कर संपत्ति पर कब्जा कर लिया। फलस्वरूप उत्तरदाताओं ने जुलाई वर्ष 1946 में यह वाद दायर किया, जिससे यह अपील उत्पन्न हुई है।'

वाद का प्रतिवादियों द्वारा अनेक आधारों पर विरोध किया गया, जिनसे वर्तमान में हमें कोई सरोकार नहीं है। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने हमारे समक्ष केवल उन दस भूखंडों में से तीन भूखंडों के संबंध में तर्क प्रस्तुत किए हैं, जो वाद का विषय थे। विचारण न्यायालय ने उत्तरदाताओं की ओर से प्रस्तुत कथन को स्वीकार किया और कब्जा दिलाने हेतु वाद डिक्री कर दिया तथा यह आदेश दिया कि मध्यवर्ती लाभ का निर्धारण बाद में किया जाएगा। इसके पश्चात वर्तमान अपीलकर्ताओं ने उच्च न्यायालय में अपील दायर की। उच्च न्यायालय ने एक भूखंड को छोड़कर अपील खारिज कर दी, जिसके संबंध में उत्तरदाताओं का वाद निरस्त कर दिया गया। चूँकि डिक्री आंशिक रूप से भिन्न थी, अतः उच्च न्यायालय ने प्रमाण-पत्र प्रदान किया; और इसी प्रकार यह अपील हमारे समक्ष आई है।

हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क केवल तीन भूखंडों—अर्थात् 1060, 427 और 1128—तक सीमित रखे हैं, जो अधीनस्थ न्यायालयों में विवादित दस भूखंडों में से थे। उनका तर्क है कि किसी भी स्थिति में अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा इन तीनों भूखंडों के संबंध में उत्तरदाताओं को कब्जा प्रदान करना त्रुटिपूर्ण था। अतः हम केवल इन तीन भूखंडों के संबंध में उठाए गए तर्कों पर ही विचार करेंगे।

भूखंड संख्या 1060 के संबंध में—²

अपीलकर्ताओं की ओर से इस भूखंड के संबंध में यह तर्क दिया गया कि यह न तो उत्तरदाताओं के पूर्वाधिकारियों के पक्ष में पारित अंतिम विक्रय डिक्री में शामिल था और न ही विक्रय प्रमाणपत्र में। अतः अधीनस्थ न्यायालयों के लिए इस भूखंड के संबंध में उत्तरदाताओं के पक्ष में डिक्री देना उचित नहीं था। अंतिम डिक्री में दस भूखंडों का उल्लेख है। उसमें प्रत्येक भूखंड के तौजी संख्या, खसरा संख्या, थाना संख्या, सर्वेक्षण संख्या, क्षेत्रफल तथा सीमाएँ दी गई हैं। इन दस भूखंडों में एक भूखंड संख्या 160 अंकित है, परंतु शिवध्यान सिंह के नाम से 1060 संख्या का कोई भूखंड अंकित नहीं है। विक्रय प्रमाणपत्र में भी वही दस भूखंड वर्णित हैं। उसमें खाताबंदी संख्या, भूखंड संख्या, क्षेत्रफल तथा सीमाएँ दी गई हैं। वहाँ भी 160 अंकित है, परंतु 1060 अंकित नहीं है। उच्च न्यायालय ने यह माना कि अंतिम डिक्री तथा विक्रय प्रमाणपत्र में 160 अंकित होना वास्तव में 1060 के स्थान पर हुई त्रुटि है। आगे यह भी कहा गया कि यह मामला केवल गलत वर्णन का है, न कि पहचान के विवाद का, क्योंकि इस मामले में अंतिम डिक्री में सम्मिलित तथा विक्रय प्रमाणपत्र द्वारा बेचे गए भूखंड की पहचान अनिश्चित नहीं है। उच्च न्यायालय ने यह इंगित किया कि अंतिम डिक्री और विक्रय प्रमाणपत्र में दी गई खाताबंदी संख्या, क्षेत्रफल तथा सीमाएँ भूखंड संख्या 1060 से पूर्णतः मेल खाती हैं। साथ ही यह भी बताया गया कि कब्जा दिलाने के आदेश में, जो

उत्तरदाताओं के पूर्वाधिकारियों के पक्ष में था, तथा उत्तरदाताओं के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख में सही भूखंड संख्या (अर्थात् 1060) ही अंकित है। इसके अतिरिक्त उच्च न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि खाताबंदी संख्या 97 में 160 संख्या का कोई भूखंड अस्तित्व में नहीं है। अतः जब खाताबंदी संख्या, क्षेत्रफल तथा सीमाएँ 1060 से मेल खाती हैं, तो भूखंड की पहचान स्पष्ट रूप से स्थापित है और केवल एक शून्य के छूट जाने से अंतिम डिक्री तथा विक्रय प्रमाणपत्र में गलत वर्णन हो गया है।³

इस संदर्भ में अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने *रामभद्र नायडू बनाम कादिरियासामी नायकर* (1) के निर्णय पर अवलंबन किया। उस मामले में यह कहा गया था कि विक्रय प्रमाणपत्र स्वामित्व के महत्वपूर्ण दस्तावेज होते हैं और उन्हें हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए तथा न ही शिथिल रूप से व्याख्यायित किया जाना चाहिए। आगे यह भी कहा गया कि यदि बंधक डिक्री के अंतर्गत विक्रय में क्रेता को ऐसा विक्रय प्रमाणपत्र दिया गया है, जिसमें कुछ संपत्ति स्पष्ट रूप से सम्मिलित है और उसका कब्जा भी दे दिया गया है, तो बाद के वाद में बंधककर्ता के प्रतिनिधि के लिए यह कहना स्वीकार्य नहीं होगा कि वह संपत्ति डिक्री के अंतर्गत विक्रय में शामिल नहीं थी। परंतु उस मामले के तथ्य वर्तमान मामले से भिन्न थे। वहाँ स्थिति यह थी कि बंधक में 'पन्नई' भूमि शामिल थी, जो बंधककर्ता के अधिकार एवं भोग में थी। किंतु बंधक के समय कुछ 'पन्नई' भूमि उसके भोग में नहीं थी। निष्पादन कार्यवाही के समय, जो व्यक्ति उन भूमियों के कब्जे में था, उसकी मृत्यु हो चुकी थी, और अंतिम डिक्री तथा निष्पादन कार्यवाही में बंधककर्ता के अधिकार एवं भोग में आने वाली सभी 'पन्नई' भूमियों के विक्रय का आदेश दिया गया। बंधककर्ता ने आपत्ति की कि कुछ 'पन्नई' भूमि बंधक के बाहर थी और विक्रय योग्य नहीं थी। यह आपत्ति अस्वीकृत कर दी गई और सभी 'पन्नई' भूमियों का विक्रय कर दिया गया तथा उन्हें विक्रय प्रमाणपत्र में शामिल किया गया और उनका कब्जा भी क्रेताओं को दे दिया गया। इन परिस्थितियों में,

3 (3) (1913) 18 सी.एल.जे. 541

प्रिवी काउंसिल ने यह कहा कि यह संभव नहीं है कि बंधक विलेख की ओर पुनः जाकर यह देखा जाए कि वास्तव में क्या बेचा गया था। साथ ही यह भी कहा गया कि ऐसी स्थिति में दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के कारण कोई वाद भी प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

वर्तमान अपील में, उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता हमसे यह नहीं कहते कि हम विक्रय प्रमाणपत्र और अंतिम विक्रय डिक्री से परे जाएँ; उनका तर्क यह है कि इन दोनों अभिलेखों में भूखंड संख्या का केवल गलत वर्णन हुआ है और बेचे गए भूखंड की पहचान उन परिस्थितियों से स्पष्ट है, जिनका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। वे *ठाकुर ब्रह्मा बनाम जीवन राम मारवाडी* (1913) के निर्णय पर अवलंबन करते हैं। उस मामले में यह हुआ था कि निर्णय-ऋणी एक महल का स्वामी था, जिसमें दस आना हिस्सा बंधक था, जबकि शेष हिस्सा बंधनमुक्त था। उसके एक ऋणदाता ने बंधक हिस्से में से छह आना हिस्से को कुर्क कर विक्रय हेतु प्रस्तुत किया। कुर्क की गई संपत्ति का विक्रय कर दिया गया। जब नीलामी क्रेताओं ने विक्रय प्रमाणपत्र के लिए आवेदन किया, तो उन्होंने यह कहा कि विक्रय योग्य संपत्ति के विवरण में त्रुटि हो गई है, क्योंकि "नहीं" शब्द छूट गया है, और संपत्ति को "बंधक नहीं" वाले छह आना हिस्से के रूप में वर्णित किया जाना चाहिए था। यह प्रार्थना निष्पादन न्यायालय द्वारा स्वीकार कर ली गई और उच्च न्यायालय में अपील भी असफल रही। प्रिवी काउंसिल में अपील होने पर यह कहा गया कि न्यायिक विक्रय में केवल वही संपत्ति बेची जा सकती है जो कुर्क की गई हो, और वह संपत्ति उसी विवरण से निश्चित होती है, जिसका उल्लेख कुर्की सूची में किया गया है, अर्थात् बंधक के अधीन छह आना हिस्सा। अतः अपील स्वीकार कर ली गई। प्रिवी काउंसिल ने यह भी कहा कि गलत वर्णन का मामला मात्र अनियमितता माना जा सकता है, परंतु उनके समक्ष जो मामला था, वह पहचान का मामला था, न कि केवल गलत वर्णन का। यह भी स्पष्ट किया गया कि यदि संपत्ति की पहचान पूर्णतः स्पष्ट है और केवल किसी बात में गलत वर्णन है, तो वह भिन्न स्थिति होगी।

इस निर्णय का प्रभाव यह है कि जहाँ पहचान में कोई संदेह नहीं है और केवल गलत वर्णन है, वहाँ उसे मात्र अनियमितता माना जा सकता है। उत्तरदाताओं की ओर से जिस अन्य निर्णय पर अवलंबन किया गया है, वह है गोसाईं दास कुंड़ बनाम मृत्युंजय अग्रन सरदार (³)। उस मामले में विक्रय की गई भूमि का वर्णन उसकी सीमाओं और क्षेत्रफल से किया गया था, परंतु क्षेत्रफल में त्रुटि प्रतीत हुई। यह माना गया कि यह क्षेत्रफल का गलत वर्णन है और सीमाओं को प्रधानता दी जाएगी।

हमारे मत में वर्तमान मामला भी गलत वर्णन का ही है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, क्षेत्रफल, खाताबंदी संख्या और सीमाएँ सभी भूखंड संख्या 1060 की ओर संकेत करती हैं, और हुआ यह है कि भूखंड संख्या लिखते समय एक शून्य छूट गया, जिससे 1060 के स्थान पर 160 लिख दिया गया। यह भी महत्वपूर्ण है कि खाताबंदी संख्या 97 में 160 संख्या का कोई भूखंड है ही नहीं। इन परिस्थितियों में हमारा मत है कि उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचने में सही था कि यह केवल गलत वर्णन का मामला है और विक्रय की गई संपत्ति की पहचान स्पष्ट रूप से स्थापित है, अर्थात् यह भूखंड संख्या 1060 ही है। स्थिति भिन्न हो सकती थी यदि अंतिम विक्रय डिक्री तथा विक्रय प्रमाणपत्र में सीमाएँ न दी गई होतीं और केवल भूखंड संख्या का ही उल्लेख होता। परंतु जहाँ सीमाएँ तथा भूखंड संख्या दोनों उपलब्ध हैं और परिस्थितियाँ वर्तमान मामले जैसी हैं, वहाँ भूखंड संख्या में हुई त्रुटि को मात्र गलत वर्णन माना जाएगा, जो संपत्ति की पहचान को प्रभावित नहीं करती। अतः इस भूखंड के संबंध में अपीलकर्ताओं का तर्क अस्वीकार्य है।

भूखंड संख्या 427 के संबंध में यह भूखंड मूलतः वर्ष 1920 में दो अन्य भूखंडों के साथ अन्य प्रतिवादियों के पक्ष में 400 रुपये पर बंधक रखा गया था। बाद में बंधककर्ता ने वर्ष 1927 में इस भूखंड सहित कई अन्य भूखंडों को रमजान मियाँ एवं एक अन्य के पक्ष में 2,500 रुपये पर उपभोगाधिकार बंधक के रूप में रखा। इस बंधक पत्र में यह नहीं दर्शाया गया कि पूर्ववर्ती बंधक का विमोचन करने हेतु कोई राशि छोड़ी गई थी। परंतु प्रतीत होता है

कि रमजान मियाँ के पक्ष में बंधक होने के तुरंत बाद, अन्य प्रतिवादियों के पक्ष में जो बंधक था, उसका विमोचन निजामुद्दीन एवं शम्सुद्दीन के माध्यम से बकाया राशि का भुगतान कर दिया गया। यह कहा गया कि यह भुगतान रमजान मियाँ की ओर से किया गया था, और इस कारण इस भूखंड के संबंध में रमजान मियाँ एवं एक अन्य को पूर्ववर्ती बंधकधारकों के स्थान पर स्थानापन्न अधिकार प्राप्त हो गया। आगे यह तर्क दिया गया कि रमजान मियाँ एवं एक अन्य को वर्ष 1932 के वाद में पक्षकार नहीं बनाया गया था, तथा ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि जब वर्ष 1932 में दस भूखंडों के विक्रय हेतु वाद दायर किया गया, तब वर्ष 1927 का बंधक विमोचित हो चुका था। अतः उस वाद की निष्पादन कार्यवाही में क्रेताओं को संपत्ति केवल रमजान मियाँ एवं एक अन्य के बंधक के अधीन ही प्राप्त हो सकती थी, और यदि अपीलकर्ता उनके माध्यम से कब्जे में थे, तो उन्हें बेदखल नहीं किया जा सकता था। इसके प्रत्युत्तर में उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि जहाँ तक अपीलकर्ताओं का संबंध है, इस भूखंड पर उनका अधिकार एवं स्वत्व पूर्णतः समाप्त हो चुका है, और उन्हें उस बंधक के संबंध में, जिसका विमोचन रमजान मियाँ एवं एक अन्य द्वारा किया गया, कोई स्थानापन्न अधिकार दावा करने का अधिकार नहीं है। यह भी कहा गया कि अभिलेख पर ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिससे यह सिद्ध हो कि वर्ष 1932 में जब वाद दायर किया गया, उस समय रमजान मियाँ एवं एक अन्य का बंधक विद्यमान था और अपीलकर्ता उनके ओर से कब्जे में थे। अतः अपीलकर्ता भूखंड संख्या 427 के संबंध में कब्जे का कोई दावा प्रस्तुत नहीं कर सकते। यदि रमजान मियाँ एवं एक अन्य का कोई अधिकार है, तो वे स्वयं अपने हितों की रक्षा कर सकते हैं, भले ही उन्हें वर्ष 1932 के वाद में पक्षकार न बनाया गया हो। परिणामस्वरूप, उनके बंधक के अधिकार यथावत रहेंगे और वे विधि के अनुसार उन्हें उत्तरदाताओं के विरुद्ध प्रवर्तित कर सकते हैं; परंतु अपीलकर्ता उत्तरदाताओं के दावे को विफल करने हेतु कोई दावा प्रस्तुत नहीं कर सकते।

हमारा मत है कि अपीलकर्ताओं की ओर से उठाए गए इन तर्कों में कोई बल नहीं है। प्रथम दृष्टया यह समझना कठिन है कि अपीलकर्ता रमजान मियाँ एवं एक अन्य की ओर से स्थानापन्न अधिकार का प्रश्न कैसे उठा सकते हैं। द्वितीयतः, रमजान मियाँ एवं एक अन्य केवल उसी स्थिति में वर्ष 1920 के बंधकधारकों के अधिकारों में स्थानापन्न हो सकते थे, जिनका बंधक उन्होंने विमोचित किया था, यदि उनके बंधक में इस संबंध में कोई समझौता होता कि उन्हें इस प्रकार स्थानापन्न किया जाएगा। यदि रमजान मियाँ एवं एक अन्य के पास पूर्ववर्ती बंधक के विमोचन के लिए कोई राशि छोड़ी गई होती, तो हम ऐसे समझौते का अनुमान कर सकते थे; परंतु वर्ष 1927 के उनके पक्ष में निष्पादित बंधक पत्र में पूर्ववर्ती बंधक के संबंध में कोई उल्लेख नहीं है। इन परिस्थितियों में, स्थानापन्न अधिकार का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, भले ही यह मान लिया जाए कि अपीलकर्ताओं को हमारे समक्ष रमजान मियाँ एवं एक अन्य की ओर से यह बिंदु उठाने का अधिकार था।

जहाँ तक इस तर्क का संबंध है कि रमजान मियाँ एवं एक अन्य को बंधक वाद में पक्षकार नहीं बनाया गया था, अतः उनके अधिकार प्रभावित नहीं हुए और यदि अपीलकर्ता रमजान मियाँ एवं एक अन्य के माध्यम से भूमि पर काबिज थे, तो वे कब्जे के अधिकारी बने रहते और उन्हें बेदखल नहीं किया जा सकता था—इस संबंध में इतना कहना पर्याप्त है कि यह तर्क तभी स्वीकार्य हो सकता था, यदि यह सिद्ध किया जाता कि वर्ष 1927 का बंधक वर्ष 1932 में वाद दायर होने के समय भी विद्यमान था। किन्तु इस बिंदु पर कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है और यह ज्ञात नहीं है कि वर्ष 1932 में रमजान मियाँ एवं एक अन्य का बंधक अस्तित्व में था या नहीं। इसके अतिरिक्त उच्च न्यायालय का निष्कर्ष है कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि कम से कम वर्ष 1935 में अपीलकर्ता भूखंड संख्या 427 के कब्जे में थे। इन परिस्थितियों में हम यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि वर्ष 1932 में वाद दायर होने के समय रमजान मियाँ एवं एक अन्य का बंधक विद्यमान था और अपीलकर्ता उनके ओर से इस भूखंड के कब्जे में थे। अतः अभिलेख पर

इस संबंध में किसी प्रमाण के अभाव में अपीलकर्ता यह कहकर उत्तरदाताओं के कब्जे के दावे का विरोध नहीं कर सकते कि वे इस भूखंड पर रमजान मियाँ एवं एक अन्य की ओर से काबिज हैं। अतः भूखंड संख्या 427 के संबंध में अपीलकर्ताओं का तर्क भी अस्वीकार्य है।

भूखंड संख्या 1128 के संबंध में—

इस भूखंड के संबंध में अपीलकर्ताओं का मामला भूखंड संख्या 427 के समान ही है। अतः इन परिस्थितियों में इस भूखंड के संबंध में भी अपीलकर्ताओं का तर्क अस्वीकार्य है। चूँकि हमारे समक्ष कोई अन्य बिंदु प्रस्तुत नहीं किया गया, अतः संपूर्ण अपील असफल होती है।

अतः हम अपील को लागत सहित निरस्त करते हैं।

अपील निरस्त कर दी गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।